नारायण सिंह और हमारा।

हरियाणा राज्य

(2008 की आपराधिक अपील संख्या **632)**

9 अप्रैल**, 2008**

(डॉ**.** अरिजीत पसायत और पी**.** सतषिवम**,** जे**.**जे**.)**

दंड संहिता**, 1860,** धारा **96** से **106, 304** भाग**-II** सपठित धारा **34**

भूमि विवाद विद्यमान होने से निजी सुरक्षा का अधिकार- अपील कर्ता नम्बर 1 पी.डब्ल्यू 3 के पते पर बंदूक से गोलियां चलाई, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। अन्य अपीलार्थी संख्या 1 पुत्र थे। उन्होंने पी.ड. को4 "Jaily" से हमला किया- सभी अपालार्थी द्वारा निजी बचाव की दलील जिन तथ्यों पर आधारित थीं वह तर्क संगत नहीं है। निजी रक्षा का अधिकार अनिवार्य रूप से भारतीय दंड संहिता में साहसी कानून द्वारा परिचालित एकरक्षात्मक अधिकार है जो केवल तभी उपलब्ध हेाता है जब परिस्थितियां स्पष्ट रूप से उचित ठहराती हैं। रक्षा के अधिकार में आक्रमण शुरू करने का अधिकार शामिल नहीं है। खासकर जब तक बचाव का साधन ही नहीं बचा हो- धारा 304 भाग-2 सपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराये जाने पर अपीलार्थी संख्या 1 को 7 साल की व अन्य अपीलार्थीयों को 5 साल की सजा सुनाई गयी।

अभियोजक पक्ष के अनुसार दोनों पक्षों के बीच भूमि विवाद विद्यमान था। जब पी.ड-3 व उसके पति पी.ड. 4 ने अपीलार्थियों को अपने भूमि में ज्वार बौने से रोकने की कोषिष की तो अपीलकर्ता न. 1 ने पी.ड. -3 के पति पर बंदूक से गोली चलाई जो घातक साबित हुआ, जबकि अन्य अपीलार्थी, जो अपीलार्थी संख्या 1 के बेटे थे उनहोंने पी.ड.3 व 4 पर "Jaily" से हमला किया।

विचारणीय न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषी ठहराया। उन्हें धारा 302 सपठित धारा 34 भारतीय संहिता के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई और डिफ़ॉल्ट र्षट के साथ 20 हजार रूपये का प्रत्येक पर जुर्माना लगाया। अपीलकर्ताओं ने निजी बचाव के अधिकार की याचिका लेते हुए अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने यह माना कि अपीलकर्ता संख्या-1 ने बंदूक से गोली चलाकर निजी बचाव केे अधिकार को अतिलंघित कर लिया था क्योंकि मृतक व गवाह केवल लाठियों से सज्जित थे। लेकिन उनकी सजा को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 सपठित धारा 34 में साधारण कारावास में बदल दिया। हालांकि अन्य अपीलार्थियेां को भी इसी तरह दोषी ठहराया गया था लेकिन उनमें से प्रत्येक को केवल 5 साल के लिए साधारण कारावास की सजा सुनाई गई। विचारणीय न्यायालय द्वारा दिये गये जुर्माने को उच्च न्यायालय ने बरकरार रखा।

इस न्यायालय ने अपील मे यह प्रस्तुत किया कि अपीलार्थियों को निजी रक्षा के अधिकार द्वारा संरक्षित किया गया था और किसी भी स्थित में उन्हें दी गई सजा उचित नहीं थी।

अपीलार्थी संख्या 1 द्वारा दायर अपील को आंषिक रूप से स्वीकार किया गया तथा अन्य अपीलाथ्रियों द्वारा दायर अपील को खारिज किया गया।

अभिनिर्धरित : 1.1 धारा 96 भारतीय दंड संहिता में प्रावधान है कि निजी अधिकार के प्रयोग में किया गया कोई कार्य अपराध नहीं है। यह धारा निजी रक्षा के अधिकार की अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं करती है। यह केवल यह इंगित करती है कि ऐसा कुछ भी अपराध नहीं है जो निजी अधिकार के प्रयोग में किया जाता है। किसी व्यक्ति के निजी बचाव के अधिकार के प्रयोग में वैध रूप से कार्य किया गया है, यह तथ्य का प्रश्न है जिसे प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इस तरह के प्रश्न को निर्धारित करने के सार में किसी भी परीक्षण को करने में कम नहीं किया जा सकता। न्यायालय को आसपास की सभी परिस्थितयों पर विचार करना चाहिए, आरोपी के लिए शब्दों में दलील देना जरूरी नहीं है कि उसने आत्मरक्षा में काम किया है। यदि परिस्थियों से पता चलता है कि निजी रक्षा के अधिकार में वैध रूप से प्रयोग किया गया था, तो किसी दिये गये मामले में ऐसी याचिका पर

विचार करने के लिए न्यायालय खुला है। इस पर विचार किया जा सकता है, भले ही अभियुक्त ने इसे नहीं लिया हो, यदि विचार करने के लिए उपलब्ध है तो सामग्री व उपलब्ध रिकॉर्ड से भी न्यायालय उस पर विचार कर सकती है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1972 की धारा 105 के तहत सबूत का भार अभियुक्त पर है जो आत्मरक्षा की दलील प्रस्तुत करता है और सबूत के अभाव में न्यायालय के लिए आत्मरक्षा की दलील की सत्यता का अनुमान लगाना संभव नहीं है। न्यायालय ऐसी परिस्थिति में अनुपस्थिति मानेगा। यह अभियुक्त पर निर्भर करता है कि वह स्वयं सकरात्मक साक्ष्य पर गौर करके या अभियोजन पक्ष के द्वारा जांच किये गये गवाहों से आवश्यक तथ्य प्राप्त करके आवश्यक सामग्री रिकॉर्ड पर रखे। निजी बचाव के अधिकार की दलील लेने वाले आरोपी को साक्ष्य में बुलाने की आवश्यकता नही है, वह अभियोजक साक्ष्य से उत्पन्न परिस्थिति के संदर्भ में अपनी दलील स्थापित कर सकता है। आरोपी द्वारा किसी बोझ का निर्वहन करने का सवाल नहीं है यह निजी अधिकार है कि बचाव की वकालत की जाती है। बचाव एक उचित और संभावित और संस्करण होना चाहिए जो अदालत को संतुष्ट करे कि आरोपी द्वारा किया गया नुकसान या तो हमले से बचने के लिये है या आरोपी की ओर से आगे की उचित आंषका को रोकने के लिये आवष्यक था। आत्मरक्षा की दलील को स्थापित करने का भार अभियुक्त पर है और रिकॉर्ड पर मौजूद

सामग्री के आधार पर याचिका के पक्ष में संभावनाओं की प्रबलता दिखाकर उससे मुक्ति पा ली जाती है।

1.2 धारा 100 से 101 भारतीय दण्ड संहिता शरीर के निजी रक्षा के अधिकार की सीमा को परिभाषित करती है यदि किसी व्यक्ति को धारा 97 भारतीय दण्ड संहिता को निजी अधिकार है तो वह अधिकार धारा 100 के तहत मृत्यु का कारण बनने तक विस्तारित है यदि उचित आशंका है कि मृत्यु या गंभीर चोट हमले के परिणाम होंगे। अभियुक्त को उचित संदेह से परे निजी बचाव के अधिकार के अस्तिव को साबित करने की आवश्यकता नहीं है यह उसके लिए दीवानी प्रकरणों की तरह पर्याप्त है कि वह संभावनाओ की प्रबलता उस याचिका के पक्ष में है।

1.3 यह निर्धारित करने के लिए कि हमलावर कौन था, चोटों की संख्या हमेशा एक सुरक्षित मानदंड नहीं होती है। यह एक सार्वभौमिक नियम के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी चोटें आरोपी व्यक्तियों के शरीर पर होती हैं, तो यह अनुमान अवश्य लगाया जाना चाहिए कि आरोपी व्यक्तियों ने निजी रक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए चोटें पहुंचाई हैं। बचाव पक्ष को यह भी स्थापित करना होगा कि अभियुक्त को लगी चोटें निजी रक्षा के अधिकार के संस्करण की संभावना है। घटना के समय या झगड़े के दौरान अभियुक्त को लगी चोटों के बारे में स्पष्टीकरण न देना एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिस्थिति है। लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा

केवल चोटों के बारे में स्पष्टीकरण न देना सभी मामलों में अभियोजन मामले को प्रभावित नहीं कर सकता है। यह सिद्धांत उन मामलों पर लागू होता है जहां अभियुक्त को लगी चोटें मामूली और सतही होती हैं या जहां साक्ष्य इतना स्पष्ट और ठोस, इतना स्वतंत्र और उदासीन, इतना संभावित, सुसंगत और श्रेय देने योग्य होता है कि यह चूक के प्रभाव से कहीं अधिक होता है। चोटों की व्याख्या करने के लिए अभियोजन पक्ष का हिस्सा।

1.4 निजी बचाव के अधिकार की दलील अनुमानों और अटकलों पर आधारित नहीं हो सकती। इस बात पर विचार करते समय कि क्या किसी आरोपी को निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है, यह प्रासंगिक नहीं है कि क्या उसके पास हमलावर को गंभीर और घातक चोट पहुंचाने का मौका हो सकता है। यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी आरोपी को निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है, पूरी घटना की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और उचित सेटिंग में देखा जाना चाहिए। धारा 97 निजी रक्षा के अधिकार के विषय से संबंधित है। अधिकार की दलील में अधिकार का प्रयोग करने वाले व्यक्ति का शरीर या संपत्ति शामिल है; या (ii) किसी अन्य व्यक्ति का; और अधिकार का प्रयोग शरीर के विरुद्ध किसी भी अपराध के मामले में, और चोरी, डकैती, शरारत या आपराधिक अतिचार के अपराधों और संपत्ति के संबंध में ऐसे अपराधों के प्रयासों के मामले में किया जा सकता है। धारा 99 निजी रक्षा के अधिकार की सीमाएँ निर्धारित

करती है। धारा 96 और 98 कुछ अपराधों और कृत्यों के विरुद्ध निजी बचाव का अधिकार देती हैं। धारा 96 से 98 और 100 से 106 के तहत दिए गए अधिकार धारा 99 द्वारा नियंत्रित होते हैं । स्वैच्छिक मृत्यु कारित करने तक विस्तारित निजी बचाव के अधिकार का दावा करने के लिए, अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ थीं जो इस आशंका के लिए उचित आधार पैदा करती थीं कि या तो उसे मृत्यु या गंभीर चोट पहुँचाई जाएगी। अभियुक्त पर यह दिखाने का भार है कि उसे निजी बचाव का अधिकार था जो मृत्यु का कारण बनने तक विस्तारित था। आईपीसी की धारा 100 और 101 निजी रक्षा के अधिकार की सीमा और विस्तार को परिभाषित करें।

1.5 आईपीसी की धारा 102 और 105 क्रमशः शरीर और संपत्ति की निजी सुरक्षा के अधिकार की शुरुआत और निरंतरता से संबंधित हैं। अधिकार तब शुरू होता है, जब किसी प्रयास, या धमकी, या अपराध करने से शरीर को खतरे की उचित आशंका उत्पन्न होती है, भले ही अपराध नहीं किया गया हो, लेकिन तब तक नहीं जब तक कि उचित आशंका न हो। अधिकार तब तक कायम रहता है जब तक शरीर को खतरे की उचित आशंका बनी रहती है।

1.6 यह पता लगाने के लिए निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है या नहीं, अभियुक्त को लगी चोटें, उसकी सुरक्षा के लिए खतरा,

अभियुक्त द्वारा पहुंचाई गई चोटें और परिस्थितियां क्या अभियुक्त के पास सार्वजनिक प्राधिकारियों की सहायता लेने का समय था। सभी प्रासंगिक कारकों पर विचार किया गया।

1.7 एक व्यक्ति जो मौत या शारीरिक चोट की आशंका जता रहा है, वह पल भर में और परिस्थितियों में, चोटों की संख्या को सुनहरे तराजू में नहीं तौल सकता है। उन हमलावरों को निहत्था करना आवश्यक था जो हथियारों से लैस थे। उत्तेजना और अशांत मानसिक संतुलन के क्षणों में यह उम्मीद करना अक्सर मुश्किल होता है कि पक्ष संयम बनाए रखेंगे और प्रतिशोध में केवल उतने ही बल का उपयोग करेंगे जितना उसे आशंका है कि हमला आसन्न है, जहां बल के प्रयोग से हमला करना वैध होगा। जैसे ही खतरा इतना आसन्न हो जाता है, आत्मरक्षा में बल और निजी-रक्षा का अधिकार शुरू हो जाता है। ऐसी स्थितियों को व्यावहारिक रूप से देखा जाना चाहिए, न कि उच्च शक्ति वाले चश्मे या सूक्ष्मदर्शी से, ताकि मामूली या सीमांत अतिक्रमण का पता लगाया जा सके। उचित महत्व दिया जाना चाहिए, और मौके पर अचानक क्या होता है, इस पर विचार करने और सामान्य मानवीय प्रतिक्रिया और आचरण को ध्यान में रखते हुए अति तकनीकी दृष्टिकोण से बचना होगा, जहां आत्म-संरक्षण सर्वोपरि विचार है। लेकिन, अगर वास्तविक स्थिति यह दर्शाती है कि आत्म-संरक्षण की आड़ में, वास्तव में जो किया गया है वह मूल हमलावर पर हमला करना है,

भले ही उचित आशंका का कारण गायब हो गया हो, निजी-रक्षा के अधिकार की दलील वैध रूप से नकारात्मक हो सकती है . याचिका पर विचार करने वाली अदालत को यह निष्कर्ष निकालने के लिए सामग्री का मूल्यांकन करना होगा कि याचिका स्वीकार्य है या नहीं। यह अनिवार्य रूप से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तथ्य की खोज है।

1.8 आत्मरक्षा का अधिकार एक बहुत ही मूल्यवान अधिकार है, जो एक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करता है और इसे संकीर्ण रूप से नहीं समझा जाना चाहिए। परिस्थितियों का आकलन आसपास के उत्साह और भ्रम की स्थिति में संबंधित अभियुक्त के व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, जो खतरे की स्थिति का सामना करता है, न कि किसी भी सूक्ष्म और पांडित्यपूर्ण जांच द्वारा। इस प्रश्न का निर्णय करते समय कि क्या मौके पर मौजूदा परिस्थितियों में आवश्यकता से अधिक बल का उपयोग किया गया था, यह अनुचित होगा, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा माना गया है, अलग निष्पक्षता द्वारा परीक्षण को अपनाना जो इतना स्वाभाविक होगा किसी न्यायालय कक्ष में, या जो एक पूरी तरह से शांत दर्शक के लिए बिल्कुल आवश्यक प्रतीत होता है। खुद के लिए खतरे की उचित आशंका का सामना करने वाले व्यक्ति से यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह अपने बचाव को चरण दर चरण किसी भी अंकगणितीय

सटीकता के साथ केवल उतना ही संशोधित करेगा जितना सामान्य समय में या सामान्य परिस्थितियों में मनुष्य की सोच के लिए आवश्यक है।

1.9 निजी रक्षा का अधिकार अनिवार्य रूप से शासी क़ानून यानी आईपीसी द्वारा परिचालित एक रक्षात्मक अधिकार है, जो केवल तभी उपलब्ध होता है जब परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से इसे उचित ठहराती हैं। इसे अपराध के प्रतिशोधात्मक, आक्रामक या प्रतिशोधात्मक उद्देश्य के बहाने के रूप में प्रस्तुत करने या उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह रक्षा का अधिकार है, प्रतिशोध का नहीं, गैरकानूनी आक्रामकता को दूर करने की अपेक्षा की जाती है न कि प्रतिशोधात्मक उपाय के रूप में। अधिकार के प्रयोग के लिए प्रावधान करते समय, आईपीसी में इस बात का ध्यान रखा गया है कि ऐसा प्रावधान न किया जाए और ऐसा कोई तंत्र तैयार नहीं किया गया है जिससे कोई हमला हत्या का बहाना बन सके। बचाव के अधिकार में आक्रामक शुरुआत करने का अधिकार शामिल नहीं है, खासकर जब बचाव की आवश्यकता नहीं रह गई है।

मुंशी राम और व्ते बनाम दिल्ली प्रशासन **AIR (1968) SC 70** य गुजरात राज्य बनाम बाई फातिमा **AIR (1975) SC 1478v** उत्तरप्रदेश राज्य बनाम मो. मुशीर खान **AIR (1977) SC 2226** य मोहिन्दर पाल जाॅली बनाम पंजाब राज्य **AIR (1979) SC 577** य बीरान सिंह बनाम बिहार राज्य **AIR (1975) SC 87** य वसन सिंह बनाम पंजाब राज्य

(1966) 1 SCC 458 य शेखर उर्फ राजा शेखरन बनाम पुलिस राज्य द्वारा पेश पुलिस जांचकर्ता तेलंगाना **(2002) 8 SCC 354** य लक्ष्मी सिंह बनाम बिहार राज्य **AIR (1976) SC 2263** य जयदेव बनाम पंजाब राज्य **AIR (1963) SC 612** य सलीम जिया बनाम उत्तरप्रदेश राज्य **AIR (1979) SC 391** य बट्ट सिंह बनाम पंजाब राज्य **AIR (1991) SC 1316** य और विद्या सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य **AIR (1971) SC 1857; relied on**

2. वर्तमान मामले में विचारणीय न्यायालय और उच्च न्यायालय ने सही माना कि अपीलकर्ता निजी बचाव के अधिकार से सुरक्षित नहीं है। हालांकि, तथ्यात्मक परिदृ य पर विचार करते हुए अपीलकर्ता संख्या 1 की सजा को घटाकर 7 साल कर दिया गया है। अन्य के संबंध में, किसी हस्तक्षेप की आव'यकता नहीं है। साथ ही लगाये गये जुर्माने की रा ि◌ा यथावत् बनी रहेगी और डिफा◌ॅल्ट ' '
नहीं है।

आपराधिक अपील नम्बर 632 वर्ष 2008 य व आदेश दिनांक 14/05/2007 आपराधिक अपील संख्या 613-डीवी/1997

याचिकाकर्ता के लिए खावैराक्पम नोबिन सिंह डी.बी और गोस्वामी

उत्तरदाता के लिए अमीत सिंह ,परीं स्वरुप और हरेन्द्र सिंह

डॉ. अरिजीत पसायत, जे. 1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले को चुनौती दी गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई है। विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, सोनीपत ने दिनांक 8.8.1997 के फैसले द्वारा अपीलकर्ताओं नारायण सिंह, रमेश, नरेश और एक सुरेश कुमार को भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में ' आईपीसी ') की धारा 34 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 302 सपठित धारा के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराया था। उन्हें डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ आजीवन कारावास और प्रत्येक को 20,000/- रुपये का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई। उन्हें आईपीसी की धारा 323 के साथ पठित धारा 34 के तहत भी दोषी ठहराया गया और तीन महीने की सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। अभियुक्त-अपीलकर्ता नारायण सिंह को शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 27 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और एक वर्ष की सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपीलकर्ता-नारायण सिंह अन्य आरोपी व्यक्तियों के पिता हैं।

3. अभियोजन संस्करण संक्षेप में इस प्रकार है: एक श्रीमती। राज बाला (पीडब्लू.3) ने कानून को गति दी। श्रीमती बाला ने पुलिस में रिपोर्ट

दर्ज कराई कि उसका पति बलबीर (बाद में 'मृतक' कहा जाएगा) सोनीपत में बिजली विभाग में ड्राइवर के पद पर कार्यरत था। वह अपने पति और बच्चों के साथ सोनीपत के मोहल्ला शाम नगर में रहती थी। उनके पति के तीन भाई और पांच बहनें थीं। उनके ससुर चरण दास के पास 10 एकड़ जमीन थी। इसमें से चार एकड़ जमीन उन्हें दी गई, जबकि चार एकड़ जमीन उसके जीजा रघबीर सिंह को दी गई। चरण दास ने दो एकड़ जमीन अपने लिए रखी। नारायण को जमीन का कोई हिस्सा नहीं दिया गया, क्योंकि उसके अपने भाइयों और बहनों के साथ अच्छे संबंध नहीं थे, नारायण ने उनके खिलाफ एक सिविल मुकदमा दायर किया। 28.5.1995 को रघबीर सिंह का पुत्र ओम प्रकाश उनके घर सोनीपत आया। उसने उन्हें बताया कि उसके चाचा नारायण सिंह अपने बेटे रमेश, सुरेश और नरेश के साथ ट्रैक्टर में ज्वार की बुआई करने के लिए अपने खेत पर गए थे। श्रीमती बाला ओम प्रकाश और अपने पति बलबीर सिंह के साथ खेत पर गई थी. वे लगभग 11/11 बजे वहां पहुंचे। उन्होंने देखा कि नरेश अपने ट्रैक्टर से खेत की जुताई कर रहा है और ज्वार बो रहा है। नारायण सिंह गले में गमछा डाले खड़े थे। उसके हाथ में उसकी लाइसेंसी बंदूक थी। उनके दोनों बेटे रमेश और सुरेश जेलियों से लैस थे। जब उन्होंने उन्हें अपने खेत में ज्वार न बोने के लिए मना किया तो नरेश ने ट्रैक्टर रोक दिया और जैली उठा ली। उन सभी ने उन्हें न बख्शने का "ललकारा"

उठाया। इसके बाद नारायण ने उनके पति बलबीर सिंह पर गोली चला दी, जो उनकी छाती पर लगी। रमेश ने श्रीमती पर लाठी का जोरदार प्रहार किया। बाला के सिर पर सुरेश ने जेली के दो-तीन झटके और मारे. नरेश ने ओम प्रकाश को 3-4 जैली मार दीं. इस बयान के आधार पर 28.5.1995 को दोपहर 1.00 बजे एफआईआर एक्स पीए/1 दर्ज की गई। विशेष रिपोर्ट उसी दिन शाम 4.30 बजे इलाक़ा मजिस्ट्रेट, सोनीपत के पास पहुंची। जांच पूरी होने के बाद, आरोप पत्र दायर किया गया था। चूंकि उन्होंने खुद को निर्दोष बताया, इसलिए मुकदमा चलाया गया। अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए एएसआई महिंदर सिंह (पीडब्लू 1), वीरेंद्र सिंह (पीडब्लू 2), राज बाला (पीडब्लू 3), ओम प्रकाश (पीडब्लू 4), एएसआई पिरथी सिंह (पीडब्लू 5), रमेश कुमार (पीडब्लू 6), सी को गवाह बॉक्स में लाया। राजिंदर सिंह (पीडब्लू7), डॉ. ओपी गुजारिया (पीडब्लू8), डॉ. सुभाष माथुर (पीडब्लू 9), एचसी अनिल कुमार (पीडब्लू10), राजबीर (पीडब्लू11) और एएसआई रामेश्वर दत्त (पीडब्लू12)। पीडब्लू. 3 और 4 को चश्मदीद गवाह बताया गया। जैसा कि ऊपर बताया गया है, ट्रायल कोर्ट ने दोषसिद्धि दर्ज की और सजा सुनाई। सभी आरोपी व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की।

4. अपीलकर्ताओं ने निजी बचाव के अधिकार की दलील दी। उच्च न्यायालय ने माना कि अपीलकर्ता नारायण ने अपनी बंदूक से गोली

चलाई। उसने निश्चित रूप से निजी बचाव के अधिकार का उल्लंघन किया, क्योंकि मृतक और गवाह केवल लाठियों से लैस थे। इसलिए, यह माना गया कि उचित सजा आईपीसी की धारा 304 भाग II के तहत होगी । अपीलकर्ता नारायण सिंह को आईपीसी की धारा 304 भाग II के साथ पठित धारा 34 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दस साल की कैद की सजा सुनाई गई थी। हालाँकि अन्य आरोपियों को भी इसी तरह दोषी ठहराया गया था, लेकिन उनमें से प्रत्येक को पांच साल के लिए साधारण कारावास की सजा सुनाई गई थी। आईपीसी की धारा 323 के तहत दंडनीय अपराध के लिए अपीलकर्ता नारायण सिंह को तीन महीने के कारावास की सजा सुनाई गई। विचारणीय कोर्ट द्वारा दिया गया जुर्माना डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ बरकरार रखा गया था। सुरेश कुमार की अपील को निरस्त माना गया क्योंकि अपील के लंबित रहने के दौरान उनकी मृत्यु हो गई।

5. अपील के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय ने गलती से यह मान लिया कि निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध नहीं था। किसी भी स्थिति में, यह प्रस्तुत किया गया कि दी गई सज़ा अधिक है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान वकील ने ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन किया।

7. एकमात्र प्रश्न जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह निजी रक्षा के अधिकार का कथित प्रयोग है। आईपीसी की धारा 96 में प्रावधान है कि निजी रक्षा के अधिकार के प्रयोग में किया गया कोई भी कार्य अपराध नहीं है । यह धारा 'निजी रक्षा के अधिकार' अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं करती है। यह केवल यह इंगित करता है कि ऐसे अधिकार के प्रयोग में किया गया कोई भी कार्य अपराध नहीं है। परिस्थितियों के एक विशेष समूह में, किसी व्यक्ति ने निजी बचाव के अधिकार का प्रयोग करते हुए वैध रूप से कार्य किया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्धारित किया जाने वाला तथ्य का प्रश्न है। ऐसे प्रश्न के निर्धारण के लिए सार में कोई परीक्षण निर्धारित नहीं किया जा सकता है। तथ्य के इस प्रश्न का निर्धारण करने में, न्यायालय को सभी आसपास की परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए। अभियुक्त के लिए इतने शब्दों में यह कहना आवश्यक नहीं है कि उसने आत्मरक्षा में कार्रवाई की। यदि परिस्थितियाँ दर्शाती हैं कि निजी बचाव के अधिकार का वैध रूप से प्रयोग किया गया था, तो न्यायालय ऐसी याचिका पर विचार करने के लिए खुला है। किसी दिए गए मामले में अदालत इस पर विचार कर सकती है, भले ही आरोपी ने इसे नहीं लिया हो, यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर यह विचार करने के लिए उपलब्ध हो। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 के तहत, सबूत का भार अभियुक्त

पर है, जो आत्मरक्षा की दलील पेश करता है, और सबूत के अभाव में, यह नहीं है न्यायालय के लिए आत्मरक्षा की दलील की सत्यता का अनुमान लगाना संभव है। न्यायालय ऐसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति मानेगा। यह अभियुक्त पर निर्भर है कि वह स्वयं सकारात्मक साक्ष्य जोड़कर या अभियोजन पक्ष के लिए परीक्षण किए गए गवाहों से आवश्यक तथ्य प्राप्त करके आवश्यक सामग्री को रिकॉर्ड पर रखे। निजी बचाव के अधिकार की दलील लेने वाले अभियुक्त को साक्ष्य बुलाने की आवश्यकता नहीं है; वह अभियोजन साक्ष्य से उत्पन्न परिस्थितियों के संदर्भ में अपनी दलील स्थापित कर सकता है। ऐसे मामले में प्रश्न अभियोजन साक्ष्य के वास्तविक प्रभाव का आकलन करने का प्रश्न होगा, न कि अभियुक्त पर किसी बोझ का निर्वहन करने का प्रश्न होगा। जहां निजी बचाव के अधिकार की वकालत की जाती है, बचाव एक उचित और संभावित संस्करण होना चाहिए जो न्यायालय को संतुष्ट करे कि अभियुक्त द्वारा किया गया नुकसान या तो हमले से बचने के लिए या अभियुक्त की ओर से आगे की उचित आशंका को रोकने के लिए आवश्यक था। आत्मरक्षा की दलील को स्थापित करने का भार अभियुक्त पर है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर उस दलील के पक्ष में संभावनाओं की प्रबलता दिखाकर इस भार से मुक्ति पा ली जाती है। (मुंशी राम और अन्य बनाम दिल्ली प्रशासन (एआईआर 1968 एससी 702), गुजरात राज्य बनाम बाई फातिमा (एआईआर 1975 एससी

1478), यूपी राज्य बनाम मोहम्मद मुशीर खान (एआईआर 1977 एससी 2226), औरमोहिंदर पाल जॉली बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1979 एससी 577). धारा 100 से 101 शरीर की निजी सुरक्षा के अधिकार की सीमा को परिभाषित करती है। यदि किसी व्यक्ति को धारा 97 के तहत शरीर की निजी रक्षा का अधिकार है , तो यह अधिकार धारा 100 के तहत मृत्यु का कारण बनने तक विस्तारित है यदि उचित आशंका है कि मृत्यु या गंभीर चोट हमले का परिणाम होगी। सलीम ज़िया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में इस न्यायालय की टिप्पणी अक्सर उद्धृत की जाती है । (एआईआर 1979 एससी 391), इस प्रकार चलता है:

"यह सच है कि एक आरोपी व्यक्ति पर आत्मरक्षा की दलील स्थापित करने का बोझ उतना कठिन नहीं है जितना कि अभियोजन पक्ष पर है और जबकि अभियोजन पक्ष को अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने की आवश्यकता होती है, आरोपी को इसकी आवश्यकता होती है दलील को पूरी तरह से स्थापित न करें और अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह में उस दलील के लिए आधार बनाकर या बचाव साक्ष्य जोड़कर संभावनाओं की मात्र प्रबलता स्थापित करके अपने दायित्व का निर्वहन कर सकते हैं।"

8. अभियुक्त को उचित संदेह से परे निजी बचाव के अधिकार के अस्तित्व को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। यह उसके लिए एक

दीवानी मामले की तरह यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि संभावनाओं की प्रबलता उसकी याचिका के पक्ष में है।

9. यह निर्धारित करने के लिए कि हमलावर कौन था, चोटों की संख्या हमेशा एक सुरक्षित मानदंड नहीं होती है। यह एक सार्वभौमिक नियम के रूप में नहीं कहा जा सकता है कि जब भी चोटें आरोपी व्यक्तियों के शरीर पर होती हैं, तो यह अनुमान अवश्य लगाया जाना चाहिए कि आरोपी व्यक्तियों ने निजी रक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए चोटें पहुंचाई हैं। बचाव पक्ष को यह भी स्थापित करना होगा कि अभियुक्त को लगी चोटें निजी रक्षा के अधिकार के संस्करण की संभावना है। घटना के समय या झगड़े के दौरान अभियुक्त को लगी चोटों के बारे में स्पष्टीकरण न देना एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिस्थिति है। लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा केवल चोटों के बारे में स्पष्टीकरण न देना सभी मामलों में अभियोजन मामले को प्रभावित नहीं कर सकता है। यह सिद्धांत उन मामलों पर लागू होता है जहां अभियुक्त को लगी चोटें मामूली और सतही होती हैं या जहां साक्ष्य इतना स्पष्ट और ठोस, इतना स्वतंत्र और उदासीन, इतना संभावित, सुसंगत और श्रेय देने योग्य होता है कि यह चूक के प्रभाव से कहीं अधिक होता है। चोटों की व्याख्या करने के लिए अभियोजन पक्ष का हिस्सा। [देखें लक्ष्मी सिंह बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1976 एससी 2263)]। निजी बचाव के अधिकार की दलील अनुमानों और अटकलों पर आधारित नहीं हो

सकती। इस बात पर विचार करते समय कि क्या किसी आरोपी को निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है, यह प्रासंगिक नहीं है कि क्या उसके पास हमलावर को गंभीर और घातक चोट पहुंचाने का मौका हो सकता है। यह पता लगाने के लिए कि क्या किसी आरोपी को निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है, पूरी घटना की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और उचित सेटिंग में देखा जाना चाहिए। धारा 97 निजी रक्षा के अधिकार के विषय से संबंधित है। अधिकार की दलील में अधिकार का प्रयोग करने वाले व्यक्ति का शरीर या संपत्ति शामिल है; या (ii) किसी अन्य व्यक्ति का; और अधिकार का प्रयोग शरीर के विरुद्ध किसी भी अपराध के मामले में, और चोरी, डकैती, शरारत या आपराधिक अतिचार के अपराधों और संपत्ति के संबंध में ऐसे अपराधों के प्रयासों के मामले में किया जा सकता है। धारा 99 निजी रक्षा के अधिकार की सीमाएँ निर्धारित करती है। धारा 96 और 98 कुछ अपराधों और कृत्यों के विरुद्ध निजी बचाव का अधिकार देती हैं। धारा 96 से 98 और 100 से 106 के तहत दिए गए अधिकार धारा 99 द्वारा नियंत्रित होते हैं । स्वैच्छिक मृत्यु कारित करने तक विस्तारित निजी बचाव के अधिकार का दावा करने के लिए, अभियुक्त को यह दिखाना होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ थीं जो इस आशंका के लिए उचित आधार पैदा करती थीं कि या तो उसे मृत्यु या गंभीर चोट पहुँचाई जाएगी। अभियुक्त पर यह दिखाने का भार है कि उसे निजी बचाव का अधिकार था जो मृत्यु

का कारण बनने तक विस्तारित था। आईपीसी की धारा 100 और 101 निजी रक्षा के अधिकार की सीमा और विस्तार को परिभाषित करें।

10. आईपीसी की धारा 102 और 105 क्रमशः शरीर और संपत्ति की निजी सुरक्षा के अधिकार की शुरुआत और निरंतरता से संबंधित हैं। अधिकार तब शुरू होता है, जब किसी प्रयास, या धमकी, या अपराध करने से शरीर को खतरे की उचित आशंका उत्पन्न होती है, भले ही अपराध नहीं किया गया हो, लेकिन तब तक नहीं जब तक कि उचित आशंका न हो। अधिकार तब तक कायम रहता है जब तक शरीर को खतरे की उचित आशंका बनी रहती है। जय देव में. बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1963 एससी 612), यह देखा गया कि जैसे ही उचित आशंका का कारण गायब हो जाता है और खतरा या तो नष्ट हो गया है या समाप्त हो गया है, निजी अधिकार का प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं हो सकता है रक्षा।

11. यह पता लगाने के लिए कि निजी बचाव का अधिकार उपलब्ध है या नहीं, अभियुक्त को प्राप्त चोटें, उसकी सुरक्षा के लिए खतरा, अभियुक्त द्वारा पहुंचाई गई चोटें और परिस्थितियां क्या अभियुक्त के पास जनता का सहारा लेने का समय था अधिकारियों को सभी प्रासंगिक कारकों पर विचार करना होगा। इसी तरह का विचार इस न्यायालय ने बीरन सिंह बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1975 एससी 87) में व्यक्त किया था। (देखें: वासन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1996) 1 एससीसी 458, शेखर उर्फ राजा

शेखरन बनाम राज्य का प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक, टीएन (2002 (8) एससीसी 354)।

12. जैसा कि बुट्टा सिंह बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1991 एससी 1316) में उल्लेख किया गया है, एक व्यक्ति जो मौत या शारीरिक चोट की आशंका जता रहा है, वह पल भर में और परिस्थितियों की गर्मी में, चोटों की संख्या को सुनहरे तराजू में नहीं तौल सकता है। उन हमलावरों को निहत्था करना आवश्यक था जो हथियारों से लैस थे। उत्तेजना और अशांत मानसिक संतुलन के क्षणों में यह उम्मीद करना अक्सर मुश्किल होता है कि पक्ष संयम बनाए रखेंगे और प्रतिशोध में केवल उतने ही बल का उपयोग करेंगे जितना उसे आशंका है कि हमला आसन्न है, जहां बल के प्रयोग से हमला करना वैध होगा। जैसे ही खतरा इतना आसन्न हो जाता है, आत्मरक्षा में बल और निजी-रक्षा का अधिकार शुरू हो जाता है। ऐसी स्थितियों को व्यावहारिक रूप से देखा जाना चाहिए, न कि उच्च शक्ति वाले चश्मे या सूक्ष्मदर्शी से, ताकि मामूली या सीमांत अतिक्रमण का पता लगाया जा सके। उचित महत्व दिया जाना चाहिए, और मौके पर अचानक क्या होता है, इस पर विचार करने और सामान्य मानवीय प्रतिक्रिया और आचरण को ध्यान में रखते हुए अति तकनीकी दृष्टिकोण से बचना होगा, जहां आत्म-संरक्षण सर्वोपरि विचार है। लेकिन, अगर वास्तविक स्थिति यह दर्शाती है कि आत्म-संरक्षण की आड़ में, वास्तव में जो किया गया है वह

मूल हमलावर पर हमला करना है, भले ही उचित आशंका का कारण गायब हो गया हो, निजी-रक्षा के अधिकार की दलील वैध रूप से नकारात्मक हो सकती है. याचिका पर विचार करने वाली अदालत को यह निष्कर्ष निकालने के लिए सामग्री का मूल्यांकन करना होगा कि याचिका स्वीकार्य है या नहीं। यह अनिवार्य रूप से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तथ्य की खोज है।

13. आत्मरक्षा का अधिकार एक बहुत ही मूल्यवान अधिकार है, जो एक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करता है और इसे संकीर्ण रूप से नहीं समझा जाना चाहिए। (विद्या सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य देखें । (एआईआर 1971 एससी 1857)। परिस्थितियों का आकलन आसपास के उत्साह और भ्रम की स्थिति में संबंधित अभियुक्त के व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, जो खतरे की स्थिति का सामना करता है, न कि किसी भी सूक्ष्म और पांडित्यपूर्ण जांच द्वारा। इस प्रश्न का निर्णय करते समय कि क्या मौके पर मौजूदा परिस्थितियों में आवश्यकता से अधिक बल का उपयोग किया गया था, यह अनुचित होगा, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा माना गया है, अलग निष्पक्षता द्वारा परीक्षण को अपनाना जो इतना स्वाभाविक होगा किसी न्यायालय कक्ष में, या जो एक पूरी तरह से शांत दर्शक के लिए बिल्कुल आवश्यक प्रतीत होता है। खुद के लिए खतरे की उचित आशंका का सामना करने वाले व्यक्ति से यह उम्मीद नहीं

की जा सकती है कि वह अपने बचाव को चरण दर चरण किसी भी अंकगणितीय सटीकता के साथ केवल उतना ही संशोधित करेगा जितना आवश्यक है सामान्य समय में या सामान्य परिस्थितियों में मनुष्य की सोच आवश्यक है।

14. रसेल के ज्ञानवर्धक शब्दों में (रसेल ऑन क्राइम, 11 वां संस्करण खंड । पृष्ठ 49 पर):

"....किसी व्यक्ति का बलपूर्वक विरोध करना उचित है जो स्पष्ट रूप से हिंसा या आश्चर्य के माध्यम से उसके व्यक्ति, आवास या संपत्ति के खिलाफ कोई ज्ञात अपराध करने का इरादा रखता है और प्रयास करता है। इन मामलों में, वह पीछे हटने के लिए बाध्य नहीं है, और हो सकता है न केवल जहां वह खड़ा है उस हमले का विरोध करें बल्कि वास्तव में खतरा समाप्त होने तक अपने प्रतिद्वंद्वी का पीछा कर सकता है और यदि उनके बीच संघर्ष में वह अपने हमलावर को मारने के लिए होता है, तो ऐसी हत्या उचित है।

15. निजी रक्षा का अधिकार अनिवार्य रूप से शासी क़ानून यानी आईपीसी द्वारा परिचालित एक रक्षात्मक अधिकार है , जो केवल तभी उपलब्ध होता है जब परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से इसे उचित ठहराती हैं। इसे अपराध के प्रतिशोधात्मक, आक्रामक या प्रतिशोधात्मक उद्देश्य के बहाने के रूप में प्रस्तुत करने या उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

यह रक्षा का अधिकार है, प्रतिशोध का नहीं, गैरकानूनी आक्रामकता को दूर करने की अपेक्षा की जाती है न कि प्रतिशोधात्मक उपाय के रूप में। अधिकार के प्रयोग के लिए प्रावधान करते समय, आईपीसी में इस बात का ध्यान रखा गया है कि ऐसा प्रावधान न किया जाए और ऐसा कोई तंत्र तैयार नहीं किया गया है जिससे कोई हमला हत्या का बहाना बन सके। बचाव के अधिकार में आक्रामक शुरुआत करने का अधिकार शामिल नहीं है, खासकर जब बचाव की आवश्यकता नहीं रह गई है।

16. ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट ने सही माना कि अपीलकर्ता निजी बचाव के अधिकार से सुरक्षित नहीं हैं।

17. दूसरा प्रश्न वाक्य का है. तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता नारायण की सजा को घटाकर सात साल कर दिया गया है। दूसरों के संबंध में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। लगाए गए जुर्माने की राशि बरकरार रहेगी और डिफ़ॉल्ट शर्त में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

18. अपीलकर्ता नारायण सिंह की अपील को उपरोक्त सीमा तक अनुमति दी जाती है,

जबकि अन्य की अपील खारिज कर दी जाती है।

चेतावनी : यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स टूल 'सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी नेहा वर्मा, (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सिमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणित होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।